भगवत् कृपा

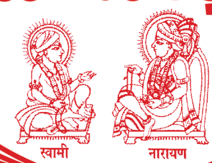

साकार प्रगट ब्रह्म को जो पहचाने, वो परम् को पाये

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली द्विमासिक सत्संग पत्रिका

निजात्मानं ब्रह्मरूपं देहत्रयविलक्षणम्। विभाव्य तेन कर्तव्या भक्तिः कृष्णस्य सर्वदा ॥ शिक्षापत्री, ११६

वर्ष 31 अंक : 1	25.1.2008 शुक्रवार (जनवरी – फरवरी)	प्रति अंक : 10.00

१९५२ की तीन फरवरी... बृहद् गुणातीत समाज का महामंगलकारी दिन!

गोंडल, अक्षरतीर्थ – मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी का समाधि स्थान, जहाँ से ३ फरवरी १९५२ के दिन गुणातीत समाज की नींव रखी गई और एक नूतन दिव्य समाज का उद्भव हुआ...

स्वामिनारायण संप्रदाय आज एक अनोखी आध्यात्मिक दृष्टि लिए नियम-मर्यादा के मूल्यों के साथ विश्व के फलक को छू रहा है। इसमें भगवान स्वामिनारायण की कृपा, मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी द्वारा दिया प्रकृति-पुरुष से परे का ब्रह्मज्ञान एवं असली साधुता, गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज की अजोड़ तपस्या व गुरुहरि योगीजी महाराज की अध्यात्म शक्ति का जितना योगदान है, उतनी ही महत्त्वपूर्ण घटना प.पू. काकाजी के साक्षात्कार की है।

तभी तो **'ब्रह्मनिर्झर'** ने १९९८ में लिखा है कि – **प.पू. काकाजी के इस साक्षात्कार के लिए सत्संग की भावी पीढ़ी स्वामिश्रीजी और योगीबापा की यावच्चन्द्रदिवाकरौ ऋणी रहेगी।**

अक्षरधाम की ७२ घंटे की समाधि में उन्हें श्रीजी महाराज और योगीबापा के तादात्म्य-दिव्य ऐक्य का निराला **'दर्शन'** हुआ। और... सही दृष्टि से निहारें तो **१९५२ में प.पू. काकाजी को यह साक्षात्कार होने के पश्चात् ही सत्संग में एक परिवर्तन आया व सत्संग को एक नई दृष्टि-एक नई दिशा मिली।**

इस बात को तनिक भी झुठला नहीं सकेंगे कि जैसे श्रीजी महाराज यदि अपने साथ मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी को धरती पर लाए नहीं होते, तो श्रीजी महाराज के स्वरूप की सम्यक् पहचान अधूरी ही रहती... ठीक उसी प्रकार गुरुहरि योगीजी महाराज के साथ प.पू. काकाजी जैसी विभूति – जिसकी शूरवीरताभरी वाणी में दंभ-अहंकार नहीं, बल्कि परम सत्य के साक्षात्कार की सिंहगर्जना थी - वह यदि आई ना होती, तो आत्मबुद्धि, प्रीति व कुटुंबभावना के सत्संग की शुरुआत ही नहीं हो पाती। प.पू. काकाजी की वाणी चेतना को सीधी स्पर्श करती... उनकी निर्दंभता मुमुक्षुओं को अपने आप सहज ही खींचती। यह बात दिल की सच्चाई से मान कर हम निरंतर जितनी याद रखेंगे, उतने हम प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर तीव्रता से अग्रसर हो पाएंगे।

वर्षों पूर्व प.पू. गुरुजी जब 'श्री अक्षरपुरुषोत्तम सत्संग पत्रिका' लिखने की सेवा करते थे; तब उनके द्वारा लिखा निम्न लेख हमें प.पू. काकाजी का

यत्किंचित् परिचय दे जाता है। किस प्रकार हमें मौज रूप मिले प्रगट स्वरूप को निहारना चाहिए, उसका अनुसरण करना चाहिए और जीवन में बसा लेना चाहिए... इस बारे एक-एक शब्द खूब मार्मिक व गहराई लिए हुए तो है ही, अपितु प.पू. काकाजी द्वारा करी गई परवरिश का आज भी हमें कहीं ना कहीं एहसास कराता है। पर क्या हम अब भी उसके तात्पर्य को समझ पाए हैं? तो आइए, ३ फरवरी निमित्त का वह लेख अबकी पढ़ें और अपने भीतर को टटोंले...

समरांगण मरुभूमि अनेकों की सुचारुतर बनी तेरे रक्तबिंदु से...

मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी ने प्रकरण चौथे की १४४वीं बात में कहा है कि –

'साधु' पहचानने की उलझन निरंतर बनी रहती है...

लेकिन, लहू टपकती करूणा बरसा कर

ब्रह्मस्वरूप गुरुवर्य योगीजी महाराज ने ऐसे अद्वितीय कल्याणकारी दिव्य विभूति पुरुषों की पहचान करवाई

और

एकांतिक धर्म की सिद्धि का-आत्यंतिकी मुक्ति का मार्ग हमारे लिए आसान, सीधा और सुलभ बनाया।

१९५२ की तीन फरवरी से उसकी शुरूआत हुई

और

ब्राह्मीस्थिति प्राप्त करने नींव का स्वरूपज्ञान दृढ़ करवाते गए।

तीन फरवरी का वह महामंगलकारी दिन – प.पू. काकाजी का साक्षात्कार दिन आया है।

साक्षात्कार तो कई प्रकार के हैं

और

प.पू. योगीजी महाराज ने लींबड़ी गाँव में पू. संतस्वामी और अन्य सभी मुक्तों के पास

इस बारे स्पष्टता करते हुए पूछा था कि –

क्या शोला दिखना-सिद्धाई देखनी-प्रकाश दिखाई पड़े उसे साक्षात्कार गिनते हो?

फिर स्वयं ने ही उत्तर देते हुए कहा था कि –

'धाम में हैं वही मुझे इस स्वरूप द्वारा साक्षात् मिले हैं', ऐसा अपरोक्षज्ञान जीव में हो जाए

और

सारा सत्संग दिव्य माना जाए-जहाँ किसी भी प्रकार का भेदभाव ना रहे

और

अल्प संबंध वाले को भी ब्रह्म की मूर्ति के रूप में देखे और जाने

वही सच्चा साक्षात्कार!

पू. भगतजी महाराज और पू. जागास्वामी की ऐसी स्थिति थी।

धाम की इस रीति, नीति और स्थिति एवं निश्चयात्मक मंगलकारी अवस्था की स्पष्टता

प.पू. काकाजी को तीन तारीख को करवा कर

सभी श्रेयार्थीयों के लिए निर्दोषबुद्धि का कहो– स्वरूप के सम्यक्ज्ञान का कहो या ज्ञानसमाधि का

राजमार्ग खुल्ला कर दिया।

मुक्तों को भी जो साधु का ज्ञान सीखने का रहता है,
वह त्यागी-गृही सभी के लिए आसान करके
सभी को एकांतिक के मार्ग पर चढ़ाए
और
समकक्ष परम एकांतिकों को एक ही स्थान और कक्षा पर एकत्व और संयुक्तभाव से वर्तते किया...
नूतन स्वर्ण युग शुरु हुआ...
आध्यात्मिक उत्थान में प्रकृतिपुरुष से परे के दिव्यजीवन में अखंड रहने की
सच्ची विजययात्रा की शुरुआत हुई।
यूं, **सभी मुमुक्षुओं के लिए ब्राह्मीस्थिति खुल्ली रखी गई**
और
वही उनका और ऐसी अनुभूति वाले परम एकांतिकों का हम पर अपरंपार एहसान है!
लेकिन, ऐसे पुरुषों का प्रभाव, जैसा है वैसा हमारी समझ में नहीं आता, यह एक बड़ी भारी खोट भी है।
हाँ, स्वरूपानुभूति वाले ऐसे मुक्तों को वे जैसे हैं वैसे पहचानना-वो अतिकठिन है ही;
क्योंकि – बिलकुल सामान्य व्यक्ति की तरह ही वे वर्तते होते हैं।
तभी तो **गुणातीतानंदस्वामिजी** ने कहा कि – ***'सारे वड़ताल प्रदेश में एक रघुवीरजी महाराज ने मुझे पहचाना'!***
और...
ऐसी पहचान-उनके अंतर की प्रसन्नता से ही होती है।
जबकि – ऐसे आशीर्वाद या अंतर की प्रसन्नता भी हाथ से फिसली बला की भाँति
प.पू. काकाजी तो १९५२ से बरसा ही रहे हैं।
लेकिन, प्रकरण ११ की ११०वीं बात* के मुताबिक अंतर का वह कुसंग हमें बाधारूप बनता है,
जिससे कि प्रकरण ५ की ६४वीं बात▲ के मुताबिक **ऐसे पुरुष का हम द्रोह कर रहे होते हैं...**
भगवान तो भक्त की पात्रता के मुताबिक उसमें रहते हैं (स्वामी की बात प्र. १-२५४)❖।
वचनामृत प्रथम २७ में बताए संत-जिसमें भगवान अखंड व सभी प्रकार से निवास करके रहे हों
'ऐसे गुणातीतस्वरूप कहो-ब्रह्मस्वरूप संत कहो या भगवान का स्वरूप कहो,
उसमें मनुष्यभाव या मायिकभाव कभी आने ही नहीं देना'–
यह गुणातीत ज्ञान का मूलभूत सनातन सत्य और रहस्य है।
प.पू. पप्पाजी तो कहते ही कि –
उस शूरवीर योद्धा (प.पू. काकाजी) को पू. बापा ने पसंद किया, निमित्त बनाया और अधिकार दिया।
ऐसे निमित्त तो कई बन सकते हैं,
लेकिन समय के अनुरूप और समाज के विकास के लिए जरुरी पात्रता-एलीजीबीलीटी के बिना
वह अधिकार नहीं मिलता।

---

* एकांतिक भक्त और साधारण के प्रति समभाव करवाए-वह अंतर का कुसंग है।

▲ सबसे बड़े साधु को दूसरों के बराबर या उनसे न्यून कहने से साधु का द्रोह होता है।

❖ भगवान उनके भक्तों में पात्रता के मुताबिक रहते हैं। जितना भक्त महान, इतने वे उसमें विशेष रूप से रहते हैं।

प्रभु के कार्य के लिए जरुरी शूरवीर प्रकृति का ‘नर’–अर्जुन पात्र था,
तो श्री कृष्ण ने उसे पसंद करके निमित्त बना कर ‘नारायणस्वरूप’ बनाया।
पर, वह पात्रता साधक को स्वयं ही जुटानी पड़ती है
और...

ऐसे पात्र बनने पर प्रभु उसे पारस से पारस बना कर सभी अधिकार भी देते हैं।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि १९५२ की तीन फरवरी से परम रहस्य की वह बात
सभी के लिए उन्होंने (प.पू. काकाजी ने) जाहिर करी –
‘ये बापा कोई सामान्य साधु नहीं, बल्कि अक्षरधाम का साक्षात् स्वरूप हैं।
महाराज, स्वामी और पू. शास्त्रीजी महाराज तक के सभी स्वरूप, बापा में सर्व प्रकार से रह कर
सभी को गुणातीत करने का राजमार्ग उनके द्वारा खुल्ला रख कर गए हैं।’
इस कार्य में कई परेशानियाँ आईं, साथीदारों ने ही अपमान भी किए;
फिर भी, कुछ भी गिने बिना एक पू. बापा की ओर ही दृष्टि रख कर
उनके कार्य को सफल बनाने वे लगे रहे।
और... हम –

१. **स्वरूपलक्षी अटकलें और मान्यता छोड़ कर**
   स्वरूपज्ञान की मूलभूत हक़ीक़त एवं तत्त्वदर्शन पर जाएं
   और
२. **कोई मांग, इच्छा, अपेक्षा, आग्रह, बचाव, खींचातानी, पक्षापक्षी नहीं रखें –**

इस हेतु खुद बुरे दिखाई देकर भी हमें प्रेमभाव से लगातार टोकते-डाँटते हुए हमने उन्हें देखे हैं।
हमें जँचे या ना जँचे लेकिन वे तो यह प्रकाश फेंकते ही रहे।
क्योंकि,
पुजवाने का, मनवाने का या उनकी ‘वाह-वाह’ कराने का उन्हें रंचमात्र भी रंज नहीं था–मोह नहीं था।

‘निरपेक्ष प्रेम’ ही तो उनके जीवन का प्रवाह था।

उन्हें तो बस इतना ही था कि उनकी यह बात समझ कर, विचार को पाकर कोई स्वीकारे
और
उस मार्ग पर चल कर जल्द से जल्द सुखी हो।
उन्हें कैफ था, मस्ती थी–
वच. वड़ताल १६ के मुताबिक शास्त्रीजी महाराज और योगीजी महाराज को सभी प्रकार से अखंड धारे रखने की!
गोंडल, भादरा तथा डांगरा में
प.पू. स्वामिबापा की मर्जी के मुताबिक सद्‌गुरु मंडलों के साथ और बेसमझ मुक्तों के पास
सेवकभाव से वर्त कर प.पू. बापा की आंतरिक प्रसन्नता के कार्य को उन्होंने जब सुहाया,
तब प.पू. बापा ने आशीर्वाद दिए –

‘जाओ! लाखों लोगों का कल्याण तुम करोगे।
तुम्हारे संबंध में आने वाले का ‘साक्षी भेद’ हो जाएगा।’

लेकिन, तब भी प.पू. काकाजी ने उनकी रमूजी मार्मिक शैली में कहा कि –
'बापा, कल्याण तो आपके प्रताप से करोड़ों और अरबों का करेंगे,
लेकिन केवल रोम-रोम में आप ही रह कर निर्दोषबुद्धि दृढ़ हो, ऐसे आशीर्वाद दीजिए।'
तब पू. बापा बोले –
'निर्दोषबुद्धि के तो तुम राजा हो और तुम्हारे द्वारा ऐसे कई निर्दोषबुद्धि को पाएँगे।'
यूं जगत में और जीवन में रह कर दिव्यजीवन की वह ख़ुश्बू फैलाते हुए
प.पू. काकाजी की शूरवीरता, निर्भयता, निश्चिंतता, समता, सरलता, निरपेक्षता, सर्वदेशीयता
हम सभी ने देखी है।
सत्संग में भी, उनके संपर्क में आए
हर एक की मुश्किलों में किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना जिम्मेदारी अपने सिर पर लेकर
उन्होंने कसनी सही हो, ऐसे अनुभव उन्होंने हर एक को कराए होंगे ही।
अनेकों के भयंकर विपरीत माहौल और प्रसंगों में अपनी इज्जत-प्रतिष्ठा की भी परवाह किए बिना
एवं
आख़िरकार भगवान की मूर्ति कॅश आऊट- इस्तेमाल करके भी
उन्हें सत्संग में निभा-टिका कर और उनके मनोरथ पूरे करके उन्हें अग्रसर कर लेने के
उदाहरण भी हमने देखे ही हैं।
और तब... सच में यूं लगता है कि –
'अकारण भला करना उनका सहज स्वभाव था।'
लेकिन इससे भी अधिक,
इन व्यक्तियों ने ही उनके **समकक्ष बन जाने की गलतफहमी में**
अपनी नाक ऊँची करके खुद की कृतघ्नता का दर्शन कराते हुए प.पू. काकाजी की ही उपेक्षा करी
और... तब भी –
उनके प्रति रंचमात्र-तनिक भी भावफेर किए बिना
वही करूणा–वही मिठास और वही उल्लास से सुहृद्‌भाव का प्रवाह बहा कर
उन सब के चैतन्य के विकास के लिए वे ऐसे के ऐसे ही तत्पर और प्रयत्नशील जब दिखाई देते,
तब अनिर्देश के उस शाहसौदागर की निर्दोषबुद्धि की निरपेक्ष सिद्धभक्ति खुली होती थी।
प.पू. काकाजी की समुंदर जैसी विशालता, हिमालय जैसी अडिगता और दया से भरसक सबल प्रेम गुणातीतबाग में सच में बेपनाह था और रहेगा।
वच. अंत्य. २६ में सच्चे ब्रह्मस्वरूप संत के लक्षण कहे हैं –
'स्वयं धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से युक्त होने के बावजूद सत्संग में कोई कुछ ना समझता हो,
उसके पास अपने आपको अतिन्यून माने और महाराज के भाव से उसकी सेवा करे'।
ऐसा एक अनमोल गुण प.पू. काकाजी के जीवन में लगातार भलीभाँति दिखाई देता था।
हमारे ज्योतिर्धरों के समान
पू. डॉक्टरस्वामिजी, पू. अक्षरविहारीस्वामिजी, पू. कोठारीस्वामिजी जैसे संतों

और
पू. जशभाई साहेब, पू. हरिभाई साहेब जैसे महामुक्तों को भी
प.पू. बापा ने उनके 'दृष्टा' के रूप में प.पू. काकाजी के हाथों में ही सौंपा था।
उन सभी को एक योगीजी महाराज की ही सर्वोपरिता समझा कर-मनवा कर
पू. हरिप्रसादस्वामी, पू. पप्पाजी, पू. महंतस्वामी जैसे भगवत्स्वरूपों की महिमा समझा कर,
उनकी सेवा कर लेने और प्रसन्नता प्राप्त कर लेने का आग्रहपूर्वक मार्गदर्शन और दृष्टि
प.पू. काकाजी ने ही दी थी, वह सभी जानते हैं।
प.पू. हरिप्रसादस्वामी के साथ बिलकुल समकक्ष का और दिव्य एकता का भाव
एवं
प.पू. पप्पाजी तथा अन्य मुक्तों के साथ समान और सेवकभाव से वे वर्ते हैं;
साथ ही –
पू. कोठारीस्वामी, पू. शास्त्रीस्वामी, पू. प्रेमस्वामी, पू. दासस्वामी जैसे संतों
और
मुबंई में युवकों को आपस में मैत्री दृढ़ करवा कर
गुणातीत रीति, नीति और स्थिति की उन्होंने जो प्रतिष्ठा करी है
वह हम सभी के लिए एक ध्रुवतारक के समान है।
यूं, उन्होंने (प.पू. काकाजी ने) आत्मबुद्धि और प्रीति के सच्चे सत्संग की शुरुआत करी।
पू. कांतिकाका, पू. चंद्रकांतभाई, पू. पोपटभाई, पू. रमणीकभाई, पू. रायशीभाई, पू. बेचरकाका,
पू. साहेब, पू. हरिभाई, पू. अक्षरविहारीस्वामिजी और संतों तथा बहनों को
जीव के सनातन सगे गिन कर प.पू. स्वामिश्री और प.पू. पप्पाजी के संपूर्ण सहकार से
संतों, युवकों, बहनों और गृहस्थों के चार पंखुड़ी के कमल को संपूर्ण खिलाया और विकसित रखा।
फलस्वरूप एक ब्रह्मनियंत्रित समाज व्यापक बना... एक क्रांतिकारी घटना बनी...
अक्षरधाम का सनातन ज्ञान मूर्त हुआ।
तभी, प.पू. पप्पाजी कहते कि अब हम यह 'विजयदिन' मना रहे हैं!
तो, जिनके रोम-रोम में पू. शास्त्रीजी महाराज और पू. योगीजी महाराज की प्रसन्नता ही थी;
ऐसे उनके जीवनसूत्रों की ओर नज़र रखें, वे क्या करवाना चाहते हैं वह समझें।
'३०-४० जने पू. भगतजी महाराज और पू. जागास्वामी जैसी आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त करें'–
ऐसे पू. बापा के आशीर्वाद की ओर दृष्टि रख कर सभी श्रेयार्थी साधक लग पड़े वह उनका **'मूल मंत्र'** है।
पू. काकाजी को तो हमने कई बार कहते सुना है कि –
'मेरे साथीदार मेरा गौरव हैं'।
जिन-जिन्होंने संतों-बहनों की सेवा करी है,
वे सभी स्वभावरहित होकर अखंड अक्षरधाम में रहते होकर खूब सुखी हों,
ऐसे आशीर्वाद भी बार-बार वे सभा में देते ही रहे।
लेकिन, वो **आशीर्वाद झेलने की पात्रता, दिव्यता के सनातन नियम पर ही निर्भर रहती है।**

वह परहेज तो छोटे-बड़े सभी को अनिवार्य शर्त के रूप में पालना ही पड़े।

उसमें कोई महोब्बत या सिफारिश या कृपा चलती नहीं है।

लेकिन, जब तक चंडाल-मायिक मन के हम संगी हैं,

तब तक सहज ही बराबरी, पदनिर्माण, तारतम्यता या भेदभाव रहने ही वाला है।

सामान्य संजोगों में तो हम सभी ने दिव्यभाव रखा है;

लेकिन जहाँ हमारी कसर टालने प.पू. काकाजी ने कुछ समझाने का प्रयत्न किया,

तब 'दुःखता है पेट और कूटते हैं सिर'–यूं उस कल्याणकारी विभूति में ही हमने मायिकभाव परखा और...

उनसे अलगाव रखते हुए चुपके-चुपके उनका खोदने लग पड़े!

द्वंद्वों को खड़ा करके, मुक्तों के बीच आपस-आपस की दूरी करी।

लेकिन, यहाँ थोड़ा सोचें कि–

क्या सच में हमने स्वरूप की यह सेवा करी?

या

उनके लिए समस्या खड़ी कर दी और उन्हें मोहताज करा?

फिर... स्वरूप को अंतर्यामी और सर्वज्ञ भी कहाँ माना?

और तब तक **गध्धामज़दूरी** बन जाती

स्थूल भक्ति-सेवा या सूक्ष्म तप-त्याग-व्रत-दान-ध्यान-प्रार्थना चाहे कितनी ही करेंगे

तो भी अंतराय टलेगा नहीं और मन उनसे मिलेगा नहीं।

फलस्वरूप रुचि बदल जाएगी

और

अभाव, उदासी, विक्षेप, भेदभाव या पक्षापक्षी के चक्कर में अनजाने भी पड़ ही जाएंगे।

दूसरी ओर प.पू. काकाजी और प.पू. पप्पाजी ने ब्रह्मनियंत्रित समाज की खूब बातें करी हैं।

तो, **उन साक्षात्कार वाले पुरुषों की कृपादृष्टि वालों को तो**

जीव में शुरू से यही खास समझ कर वर्तना है।

लेकिन, हमारी मानसिक भूमिका और भावना एवं भावात्मक संवेदना के कारण रसबसता नहीं रह पाती और

सुहृद्‌भाव खंडित होता जाता है।

यह भूल हम ना करें।

आपसी मान्यता का फर्क हो–अंगभेद हो, तो भी सहिष्णुता रखें ही।

मन के उस पार जाकर खूब जागरूकता-सावधानी एवं समझदारी से

प्रभु की सत्ता का स्वीकार कर उस ओर ही दृष्टि रख कर ,

वे जो सुझाएं वैसे वर्तने की आदत डालें

और

प.पू. काकाजी को खूब जँचती ऐसी **'सच्ची मैत्री'** आपस में दृढ़ करने की ओर तान रखें।

तो, खूब-खूब आशीर्वाद मिल जाएँगे।
चैतन्य के विकास की सीधी छलांग का यह मार्ग
गुरुदेव योगीजी महाराज ने ऐसे परम एकांतिकों के द्वारा शॉर्ट (छोटा)कर दिया है
और
नए-पुराने या आज के आए हुए के लिए भी इतना ही खुल्ला है...
तो, इस मंगलकारी तीन फरवरी को ज्यादा दैदीप्यमान बनाने
प्रगट स्वरूप की ताल से ताल मिला कर-उनके सुर में सुर मिला कर अंतर की प्रसन्नता प्राप्त करके
जल्दी सुखी हो जाएं...
यही सच्चा 'विजयदिन' मनाया कहा जाए!!!

[श्री अक्षरपुरुषोत्तम सत्संग पत्रिका – वर्ष १९७६ के अंक ३ के आधार पर]

उपरोक्त लेख का 'गुजराती' अनुवाद –

સમરાંગણ મરુભૂમિ અનેકોની
સુચારુતર બની તવ રક્તબિંદુથી...

મૂ.અ.મૂ. ગુણાતીતાનંદસ્વામીએ પ્રકરણ ચોથાની ૧૪૪મી વાતમાં કહ્યું છે કે –
'સાધુ' ઓળખવાની ઘાંટી નિરંતર રહે છે...
પણ, લોહી નિતરતી કરૂણા વરસાવીને
એવા અદ્વિતીય કલ્યાણકારી દિવ્ય વિભૂતિપુરૂષોને બ્રહ્મસ્વરૂપ ગુરૂવર્ય યોગીજી મહારાજે ઓળખાવ્યા
ને
એકાંતિકધર્મની સિદ્ધિનો-આત્યંતિકી મુક્તિનો માર્ગ આપણા માટે સુગમ, સરળ ને સુલભ બનાવ્યો.
૧૯૫૨ની ત્રીજી ફેબ્રુઆરીથી તેનાં પગરણ મંડાયાં
ને
પાયાનું સ્વરૂપજ્ઞાન બ્રાહ્મીસ્થિતિ પ્રાપ્ત કરવા દૃઢ કરાવતા ગયા.
એ મહામંગળકારી ત્રીજી ફેબ્રુઆરી – પ.પૂ. કાકાશ્રીનો સાક્ષાત્કાર દિન આવ્યો છે.
સાક્ષાત્કારો તો અનેક પ્રકારના છે
અને
પ.પૂ. યોગીજી મહારાજે લીંબડીમાં પૂ. સંતસ્વામી ને અન્ય સર્વે મુક્તો પાસે
આ બાબત ખુલાસો કરતાં પૂછેલ કે –
શું ભડકો જોવો – સિદ્ધાઈ દેખવી – પ્રકાશ થાય એ સાક્ષાત્કાર ગણો છો?
પછી પોતે જ ઉત્તર કરેલ કે –
'ધામમાં છે તે જ મને આ સ્વરૂપ થકી સાક્ષાત્ મળ્યા છે', એવું અપરોક્ષજ્ઞાન જીવમાં મનાઈ જાય
ને
આખો સત્સંગ દિવ્ય મનાય-જયાં કોઈ ભેદભાવ ન રહે
ને

અલ્પ સંબંધવાળાને ય બ્રહ્મની મૂર્તિરૂપે જુએ ને જાણે
તે સાચો સાક્ષાત્કાર !
પૂ. ભગતજી મહારાજ ને પૂ. જાગાસ્વામીની એવી સ્થિતિ હતી.
ધામની એ રીતિ, નીતિ ને સ્થિતિ અને નિશ્ચયાત્મક મંગળકારી અવસ્થાની સ્પષ્ટતા
પ.પૂ. કાકાશ્રીને શ્રીજીના કરાવીને
સૌ શ્રેયાર્થીઓ માટે નિર્દોષબુદ્ધિનો – સ્વરૂપના સમ્યક્‌જ્ઞાનનો કે જ્ઞાનસમાધિનો
રાજમાર્ગ ખુલ્લો કરી દીધો.
મુક્તોને પણ જે સાધુનું જ્ઞાન શીખવાનું રહે છે
તે ગૃહીત્યાગી સર્વ માટે સુગમ કરી
સૌને એકાંતિકના માર્ગે દોર્યા
ને
સમાન કક્ષાવાળા પરમ એકાંતિકોને એક જ સ્થાને ને કક્ષાએ એકત્વ ને સંયુક્તભાવથી વર્તતા કર્યા...
નૂતન સુવર્ણયુગ શરૂ થયો...
આધ્યાત્મિક ઉત્થાનમાં પ્રકૃતિપુરૂષથી પરના દિવ્યજીવનમાં અખંડ રહેવાની
સાચી વિજયયાત્રાની શરૂઆત થઈ
ને
આમ, **બ્રાહ્મીસ્થિતિને સર્વ મુમુક્ષુઓ માટે ખુલ્લી મુકાઈ**
તે જ –
તેમનો ને તેવા અનુભૂતિવાળા પરમ એકાંતિકોનો આપણા પર અપરંપાર ઉપકાર છે !
પણ, એવા પુરૂષનો પ્રભાવ જેવો છે તેવો આપણને સમજાતો નથી એ એક મોટી ખોટ પણ છે.
જો કે એવા સ્વરૂપાનુભૂતિવાળા મુક્તોને જેવા છે તેવા ઓળખવા એ અતિકઠિન પણ છે જ;
કારણ – તદ્દન સામાન્ય માણસની જેમ જ એ વર્તતા રહેતા હોય છે.
તેથી જ, **ગુરુ ગુણાતીતે** કહ્યું કે ***આખા વડતાલ પ્રદેશમાં એક રઘુવીરજી મહારાજે મને ઓળખ્યો***
અને
આવી ઓળખાણ તેમની અંતરની પ્રસન્નતાથી જ થાય છે.
જો કે એ આશીર્વાદ કે અંતરની પ્રસન્નતા પણ હાથ છૂટી બલાની જેમ
પ.પૂ. કાકાશ્રી ૧૯૫૨થી વરસાવે જ રાખે છે.
પણ, પ્રકરણ ૧૧ની ૧૧૦મી વાત* પ્રમાણે અંતરનો એ કુસંગ આપણને નડી જાય છે,
જેણે કરીને પ્રકરણ ૫ની ૬૪મી વાત▲ પ્રમાણે **એવા પુરૂષનો આપણે દ્રોહ કરી નાખતા હોઈએ છીએ...**
ભગવાન તો જેવા ભગવદી તેમ પાત્રતા પ્રમાણે રહે છે (સ્વા.વા. પ્ર.૧-૨૫૪)❖.
વચ. પ્ર. ૨૭ મુજબ અખંડ ને સર્વપ્રકારે નિવાસ કરીને રહે

---

* એકાંતિકને વિષે ને સાધારણને વિષે સમભાવ કરાવે તે અંતરનો કુસંગ છે.

▲ સર્વથી મોટા સાધુ હોય તેને બીજા જેવા કહેવા તથા ઉતરતા કહેવા એણે કરીને સાધુનો દ્રોહ થાય છે.

❖ ભગવાન પોતાના ભક્તમાં રહે છે તે પાત્ર પ્રમાણે રહે છે. તે જેમ જેમ મોટા ભગવદી તેમ તેમ તેમાં વિશેષપણે રહે છે.

એવા ગુણાતીતસ્વરૂપ કહો – બ્રહ્મસ્વરૂપ સંત કહો કે ભગવાનનું સ્વરૂપ કહો,
તેમાં મુનષ્યભાવ ને માયિકભાવ આવવા જ દેવો નહિ
એ ગુણાતીતજ્ઞાનનું મૂળભૂત સનાતન સત્ય ને રહસ્ય છે...
પ.પૂ. પપ્પાજી તો કહેતાં કે –
એ શૂરવીર જોધ્ધાને પૂ. બાપાએ પસંદ કર્યો, નિમિત્ત બનાવ્યા ને અધિકાર આપ્યો.
જો કે એવાં નિમિત્ત તો ઘણાં બની શકે,
પણ સમયને અનુરૂપ અને સમાજના વિકાસ માટે જરૂરી પાત્રતા વગર એ અધિકાર મળતો નથી.
જેમ કે,
પોતાના કાર્ય માટે જરૂરી શૂરવીર પ્રકૃતિનું અર્જુન પાત્ર હતા,
તો શ્રી કૃષ્ણે તેમને પસંદ કરી, નિમિત્ત બનાવી પોતારૂપ કર્યા.
અને
એ પાત્રતા સાધકે પોતે કેળવવી પડે છે...
ને
એવા પાત્ર બનતાં પ્રભુ તેને પારસથી પારસ બનાવી સર્વાધિકાર પણ આપે છે.
એ રીતે એ ત્રીજી ફેબ્રુઆરીથી આપણે જોઈએ છીએ કે એ પરમ રહસ્યની વાત
સૌ માટે એમણે જાહેર કરી કે –
'આ બાપા એ સામાન્ય સાધુ નથી, પણ અક્ષરધામનું સાક્ષાત્ સ્વરૂપ છે.
મહારાજ, સ્વામી અને પૂ. શાસ્ત્રીજી મહારાજ સુધીના બધાં જ સ્વરૂપો એમાં સર્વપ્રકારે રહીને
સૌને ગુણાતીત કરવાનો રાજમાર્ગ એમના થકી ખુલ્લો મૂકતા ગયા છે.'
આ માટે ઘણી ઉપાધિઓ આવી, સાથીદારોએ જ અપમાનો કર્યા –
છતાંય એ કાંઈએ ગણકાર્યા કર્યા સિવાય એક પૂ. બાપા તરફ જ દૃષ્ટિ રાખીને
એમના કાર્યને સફળ બનાવવા મંડયા રહ્યા.
ને... આપણે –

૧. સ્વરૂપલક્ષી અટકળતા ને માન્યતા છોડી
   સ્વરૂપજ્ઞાનની મૂળભૂત હકીકત ને તત્ત્વદર્શન પર જઈએ
   અને
૨. કોઈ માંગ, ઈચ્છા, અપેક્ષા, આગ્રહ, બચાવ, ખેંચાખેંચ કે પક્ષાપક્ષી ન રાખીએ

તે માટે પોતે ખોટા દેખાઈને ય અવિરતપણે આપણને પ્રેમભાવથી ટોકતા-વઢતા
આપણે એમને જોયા છે.
આપણને એ રુચે કે ન રુચે પણ એમણે તો એ પ્રકાશ ફેંકયા જ કર્યો!
કારણ,
પૂજાવાનો, મનાવાનો કે એમની વાહવાહ થાય એનો એમને રંચમાત્ર રંજ ન્હોતો – મોહ ન્હોતો.
નિરપેક્ષ પ્રેમ એ તો એમના જીવનનો પ્રવાહ હતો.
એમને તો બસ એટલું જ હતું કે એમની આ વાત સમજી, વિચારીને કોઈ માને

ने
એ માર્ગે ચાલે ને વહેલા સુખિયા થાય.
એમને કેફ હતો, મસ્તી હતી —
વચ. વ. ૧૬ પ્રમાણે શાસ્ત્રીજી મહારાજ ને યોગીજી મહારાજને એમણે સર્વપ્રકારે અખંડ રાખ્યાનો!
ગોંડલ, ભાદરા ને ડાંગરામાં જ્યારે
પ.પૂ. સ્વામિબાપાની અનુવૃત્તિ પ્રમાણે સદ્ગુરુ મંડળો જોડે ને અણસમજુ મુક્તો જોડે
સેવકભાવે વર્તી લઈ પ.પૂ. બાપાના અંતર્ગત રાજીપાનું કાર્ય એમણે શોભાવ્યું ત્યારે
પ.પૂ. બાપાએ આશીર્વાદ આપ્યા –
'જાવ લાખો માણસોનું કલ્યાણ તમે કરશો.
તમારા સંબંધમાં આવનારનો સાક્ષી ભેદાઈ જશે.'
પણ, ત્યારે પ.પૂ. કાકાશ્રીએ તેમની રમૂજભરી માર્મિક ભાષામાં કહ્યું કે –
'બાપા, કલ્યાણ તો આપના પ્રતાપે કરોડો ને અબજોના કરીશું.
પણ કેવળ આપ જ રોમરોમમાં રહીને નિર્દોષબુદ્ધિ દૃઢ થાય એવા આશીર્વાદ આપો.'
ત્યારે પૂ. બાપા કહે –
'નિર્દોષબુદ્ધિના તો તમે રાજા છો ને તમારા થકી બીજા એવા ઘણા નિર્દોષબુદ્ધિવાળા થશે.'
અને એ રીતે – જગતમાં ને જીવનમાં રહીને દિવ્યજીવનની એ સૌરભ પ્રસારતા
પ.પૂ. કાકાશ્રીની શૂરવીરતા, નિર્ભયતા, નિશ્ચિંતતા, સમતા, સરળતા, નિરપેક્ષતા, સર્વદેશીયતા
આપણે સૌએ જોઈ છે.
સત્સંગમાં પણ, તેમના સંપર્કમાં આવનાર
દરેકની મુશ્કેલીઓમાં કોઈ પણ પ્રકારના ભેદભાવ વિના જવાબદારી માથે લઈને
તેઓ ભીડો ખમ્યા હોય, એવા અનુભવો એમણે દરેકને કરાવ્યા હશે જ.
અનેકોના ભયંકર દેશકાળ ને પ્રસંગોમાં પોતાની આબરૂની-પ્રતિષ્ઠાની ય પરવા કર્યા વિના
છેવટે મૂર્તિ વાપરીને ય
તેમને સત્સંગમાં નભાવી, ટકાવી ને તેમના મનોરથો પૂરા કરીને તેમને આગળ લીધાના
દાખલાઓ પણ આપણે નિહાળ્યા છે જ.
અને ત્યારે ખરેખર એમ લાગે કે –
'અકારણ રૂડું કરવું એ તેમનો સહજ સ્વભાવ હતો.'
પણ, એથી ય વિશેષ તો
એવી એ જ વ્યક્તિઓ એમની **સમકક્ષાની બની ગયાના ભ્રમમાં**
નાકનું ટેરવું ઊંચુ ચડાવી પોતાની કૃતઘ્નતાનું દર્શન કરાવવા પ.પૂ. કાકાશ્રીની જ ઉપેક્ષા કરતી
અને છતાં... જ્યારે –
તેઓ પ્રત્યે રંચમાત્ર– સ્હેજ પણ ભાવફેર કર્યા વગર
એ જ કરૂણા- એ જ મીઠાશ ને એ જ ઉલ્લાસથી સુહૃદ્ભાવની સરવાણીઓ વહેવડાવી
તેઓના જ ચૈતન્યના વિકાસ માટે એવા ને એવા જ તત્પર ને પ્રયત્નશીલ

જ્યારે પ.પૂ. કાકાશ્રી દેખાતા
ત્યારે અનિર્દેશના એ શાહસોદાગરની નિર્દોષબુદ્ધિની નિરપેક્ષ સિદ્ધભક્તિ છતી થતી.
પ.પૂ. કાકાશ્રીની દરિયા જેવી વિશાળતા, હિમાલય જેવી અડગતા ને દયાથી ભરપૂર એવો સબળ પ્રેમ ગુણાતીતબાગમાં ખરેખર અણમાપ્યો છે ને રહેશે.
વચ. છે. ૨૬માં સાચા બ્રહ્મસ્વરૂપ સંતના લક્ષણ કહ્યા છે –
'પોતે ધર્મ, જ્ઞાન, વૈરાગ્ય ને ભક્તિએ યુક્ત હોવા છતાં સત્સંગમાં કોઈ કંઈ ન સમજતો હોય તેની આગળ પોતાને અતિન્યૂન માને ને તેની મહારાજના ભાવથી સેવા કરે'.
આવો એક અણમૂલો ગુણ પ.પૂ. કાકાશ્રીના જીવનમાં સારધાર દેખાય.
આપણા જ્યોતિર્ધરો સમા
પૂ. ડૉક્ટરસ્વામી, પૂ. અક્ષરવિહારીસ્વામી, પૂ. કોઠારીસ્વામી જેવા સંતો
ને
પૂ. જશભાઈ સાહેબ, પૂ. હરિભાઈ સાહેબ જેવા મહામુક્તો માટે પણ
પ.પૂ. બાપાએ તેઓના 'દ્રષ્ટા' તરીકે પ.પૂ. કાકાશ્રીને સોંપેલા.
એ સૌને એક યોગીજી મહારાજનું જ સર્વોપરીપણું સમજાવી–મનાવી
પૂ. હરિપ્રસાદસ્વામી, પૂ. પપ્પાજી, પૂ. મહંતસ્વામી જેવા ભગવત્સ્વરૂપોનો મહિમા સમજાવી
તેમની સેવા કરી લેવા ને રાજીપો મેળવી લેવા આગ્રહપૂર્વક માર્ગદર્શન ને દૃષ્ટિ
તેમણે જ આપી હતી તે સૌની જાણમાં છે જ.
પ.પૂ.હરિપ્રસાદસ્વામી સાથે સરખે સરખા ને દિવ્યએકતાના ભાવે
તેમજ
પ.પૂ. પપ્પાજી તથા અન્ય મુક્તો સાથે સમાન ને સેવકભાવે તેઓ વર્ત્યા છે;
સાથે જ –
પૂ. કોઠારીસ્વામી, પૂ. શાસ્ત્રીસ્વામી, પૂ. પ્રેમસ્વામી, પૂ. દાસસ્વામી જેવા સંતો
અને
મુંબઈમાં યુવકોને અંદરોઅંદર મૈત્રી દ્રઢ કરાવી
**ગુણાતીત રીતિ, નીતિ ને સ્થિતિની એમણે જે પ્રતિષ્ઠા કરી છે
તે આપણા સૌને માટે એક ધ્રુવતારક સમી છે.**
આમ એમણે (પ.પૂ. કાકાશ્રીએ) આત્મબુદ્ધિ ને પ્રીતિના સાચા સત્સંગની શુરૂઆત કરી.
પૂ. કાંતિકાકા, પૂ. ચંદ્રકાંતભાઈ, પૂ. પોપટભાઈ, પૂ. રમણીકભાઈ, પૂ. રાયશીભાઈ, પૂ. બેચરકાકા,
પૂ. સાહેબ, પૂ. હરિભાઈ, પૂ. અક્ષરવિહારીસ્વામી ને સંતો અને બહેનોને
જીવમાં સનાતન સગાં ગણી પ.પૂ. સ્વામિશ્રી અને પ.પૂ. પપ્પાજીના સંપૂર્ણ સહકારથી
સંતો, યુવકો, બહેનો ને ગૃહસ્થના ચાર પાંખડીના કમળને સંપૂર્ણ ખીલવ્યું ને વિકસતું રાખ્યું
ને
**એક બ્રહ્મનિયંત્રિત સમાજ વ્યાપક બન્યો... એક ક્રાંતિકારી ઘટના બની...
અક્ષરધામનું સનાતનજ્ઞાન મૂર્ત થયું.**

તેથી જ, પ.પૂ. પપ્પાજી કહેતાં કે હવે આપણે આ 'વિજયદિન' ઊજવીએ છીએ!!

તો,

જેમના રોમરોમમાં પૂ. શાસ્ત્રીજી મહારાજ ને પૂ. યોગીજી મહારાજની પ્રસન્નતા જ હતી;

એવાં એમનાં જીવનસૂત્રો તરફ નજર રાખીએ, એ શું કરાવવા માગે છે તે સમજીએ.

'૩૦-૪૦ પૂ. ભગતજી મહારાજ ને પૂ. જાગાસ્વામી જેવા થાય'

એવા પૂ. બાપાના આશીર્વાદ તરફ દૃષ્ટિ રાખી સૌ શ્રેયાર્થી સાધક મંડે એ તેમનો **'મૂળમંત્ર'** છે

પૂ. કાકાશ્રીને તો આપણે ઘણીવાર કહેતા સાંભળ્યા છે કે

'મારા સાથીદારો મારું ગૌરવ છે'.

ને

જેમણે જેમણે સંતો બહેનોની સેવા કરી છે –

તે સૌ સ્વભાવરહિત થઈ અખંડ અક્ષરધામમાં રહેતા થઈ ખૂબ સુખિયા થાય

એવા આશીર્વાદ પણ વારંવાર તેઓએ સભામાં આપ્યા જ છે.

પણ, એ **આશીર્વાદ ઝીલવાની પાત્રતા, દિવ્યતાના સનાતન નિયમ પર જ નિર્ભર રહે છે.**

તે ચરી તો નાના-મોટા સૌએ અનિવાર્ય શરત રૂપે પાળવી જ પડે.

તેમાં કોઈ મહોબત કે સિફારસ કે કૃપા ચાલતી નથી.

પણ, જ્યાં સુધી એ ચંડાળ-માયિક મનના આપણે સંગી છીએ

ત્યાં સુધી સહજ જ સરખામણી, પદનિર્માણ, તારતમ્યતા કે ભેદભાવ રહેવાના જ.

અને

સામાન્ય સંજોગોમાં તો દિવ્યભાવ સૌએ રાખ્યો છે;

પણ, જ્યાં આપણી કસર ટાળવા પ.પૂ. કાકાશ્રી કંઈક સમજાવવા પ્રયત્ન કર્યો,

ત્યારે આપણે 'દુઃખે પેટ ને કૂટીએ માથું' – એમ એ કલ્યાણકારી વિભૂતિમાં જ માયિકભાવ પરઠ્યો

ને

ઓરાભાવે ખાનગીમાં વાટવા મંડી પડી

દ્વંદ્વો ઊભાં કરી, મુક્તો વચ્ચે અરસપરસ અલગતા વધારી.

પણ, ત્યાં સ્હેજ વિચારીએ કે–

શું ખરેખર આપણે સ્વરૂપની આ સેવા કરી?

કે

એમને માટે તકલીફ ઊભી કરી આપી ને ઓશિયાળા કર્યા?

અને ત્યાં... સ્વરૂપને અંતર્યામી ને સર્વજ્ઞ પણ ક્યાં માન્યા?

ને ત્યાં સુધી **સુરતની ઘાંચણની જેમ** ગમે એટલી સ્થૂળ ભક્તિ-સેવા

કે

સૂક્ષ્મ તપ-ત્યાગ-વ્રત-દાન-ધ્યાન-પ્રાર્થના કરીશું તો ય

અંતરાય ટળશે નહિ ને મન મળશે નહિ.

તેથી રુચિ બદલાઈ જશે

ને

અભાવ, મૂંઝવણ, વિક્ષેપ, ભેદભાવ કે પક્ષાપક્ષીમાં અજાણતા પડી જ જવાશે.

વળી, પ.પૂ. કાકાશ્રી ને પ.પૂ. પપ્પાજી બ્રહ્મનિયંત્રિત સમાજની ખૂબ વાતો કરી છે.

તો, **તે જ સાક્ષાત્કાર પુરુષોની દૃષ્ટિવાળાઓએ તો**

જીવમાં પ્રથમ જ આ ખાસ સમજીને વર્તવાનું છે.

પણ, આપણી માનસિક ભૂમિકા ને ભાવના ને લાગણીવેડા નડવાથી રસબસતા ન રહેતાં

સુહૃદ્ભાવ ખંડિત થતો જાય છે.

એ ભૂલ આપણે ન કરીએ.

એકબીજા સાથે માન્યતા ફેર હોય, અંગભેદ હોય તો ય સહિષ્ણુતા રાખીએ જ.

મનથી પેલે પાર જઈ ખૂબ જાગ્રત-સજાગ ને જાણપણે

પ્રભુની સત્તા માની તે તરફ જ દૃષ્ટિ રાખી,

એ સૂઝાડે તેમ વર્તવાની ટેવ પાડીએ

ને

પ.પૂ. કાકાશ્રીને જે ખૂબ ગમે છે તે **'સાચી મૈત્રી'** અંદરોઅંદર દૃઢ કરવા તરફ તાન રાખીએ,

તો ખૂબ ખૂબ આશીર્વાદ મળી જાય.

ચૈતન્યવિકાસનો આ સીધી જ છલાંગનો માર્ગ

ગુરુદેવ યોગીજી મહારાજે આવા પરમ એકાંતિકો થકી ટૂંકાવી દીધો છે.

ને

નવા-જૂના કે આજના આવેલા માટે ય એટલો જ ખૂલ્લો છે...

તો આ મંગળકારી ત્રીજી ફેબ્રુઆરીને વધુ દૈદીપ્યમાન બનાવવા

પ્રગટ સ્વરૂપના તાલે તાલ ઉઠાવ લઈ-એમના સૂરમાં સૂર ભેળવી અંતરનો રાજીપો લઈ વહેલા સુખિયા થઈએ...

એ જ સાચો વિજયદિન ઊજવ્યો ગણાય!!!

[શ્રી અક્ષરપુરૂષોત્તમ સત્સંગ પત્રિકા-વર્ષ ૧૯૭૬ના અંક ૩ના આધારે]

✡✡✡

❋ वसंतपंचमी ❋

शिक्षापत्री जयंती एवं गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज का प्रागट्य दिन!

११ फरवरी, वसंतपंचमी – स्वामिनारायण संप्रदाय एवं 'अक्षरपुरुषोत्तम' के सभी उपासकों के लिए यह दिन खूब महत्त्वपूर्ण है। कारण– **शिक्षापत्री जयंती एवं ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज के प्राकट्योत्सव** का यह महामंगलकारी दिन है! तो, सर्वप्रथम 'शिक्षापत्री' के विषय में जानें एवं जीवन में उसकी आवश्यकता समझें –

एक ओर नवनिर्मित मंदिर और दूसरी ओर गोमती सरोवर पर घटादार वृक्षों का समूह है। इस बीच आसन रखवा कर श्रीजी महाराज वड़ताल में विराजमान थे। उनके नज़दीक ही आमोद गाँव के दीनानाथ भट्ट बैठे थे। श्रीजी महाराज उन्हें बोले :

'देखो, वह मंदिर; अभी ही निर्मित हुआ है। यह तो हर वर्ष नई शोभा पाएगा। इससे पहले हमने अमदावाद में और भुज में मंदिर किए हैं और अन्य भी करने हैं। लेकिन इन मंदिरों से अधिक दूसरा एक महत्त्वपूर्ण कार्य करना है। वह यह कि हमारे हरिभक्त अपने घर में नित्य दर्शन कर सकें, ऐसा हमारा अक्षरदेह उन्हें देना है। आज सं. १८८२ की वसंतपंचमी है, तब हम 'शिक्षापत्री' लिखना आरंभ कर रहे हैं। इसे हमारा दूसरा स्वरूप मानना। इसके नित्य पाठ से हमारे आश्रितों के सभी दुःख दूर होंगे और उनके योग-क्षेम की रक्षा होगी।'

दरअसल श्रीजी महाराज ने अपने अंतिम सात वर्ष दौरान चिरकाल टिके ऐसे दर्शनीय और प्रेरक कार्य जो किए, उसमें **'शिक्षापत्री'** अमूल्य है।

'शिक्षापत्री प्रागट्य' के ४० वर्ष के बाद सत्संग में वसंतपंचमी की एक और नई महिमा का उत्थान हुआ। महेळाव गाँव में 'डुंगर भक्त' नामक बालक ने संवत् १९२१ की वसंतपंचमी को जन्म लिया। जैसे कि कहावत है कि पूत के लक्षण पालने में ही नज़र आ जाते हैं, यूं बचपन से ही धरती पर उनके अवतरण के हेतु का ख्याल आ जाता था। बार-बार वे वड़ताल मंदिर जाते। मात्र सात साल की आयु में उन्होंने अपने पिताश्री से रामायण, महाभारत, भागवत् सुन कर कंठस्थ कर लिया था!

श्रीजी महाराज के अभिप्राय को समझे हुए एवं १२ वर्ष तक उनकी निरंतर सेवा में रहे सद्‌गुरु विज्ञानानंदस्वामिजी के योग में डुंगर भक्त आए व साधु की दीक्षा ग्रहण करके 'यज्ञपुरुषदास' बने। उसी समय से मानो 'अक्षरपुरुषोत्तम' की युगल उपासना के बीज पड़ गए और... अनादि महामुक्त भगतजी महाराज एवं अ.म.मु. जागास्वामी के संबंध व आशीर्वाद से, अक्षरपुरुषोत्तम की प्रगट की शुद्ध उपासना को समझ कर गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज ने प्रचार शुरु किया... जो कई संतों से सहा नहीं गया। अत्यधिक विरोध होना शुरु हुआ, परंतु शास्त्रीजी महाराज अपने कार्य में अडिग रहे और गुरु कृष्णजी अदा की आज्ञा से वड़ताल मंदिर का दरवाज़ा छोड़ा।

वड़ताल मंदिर से जब गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज निकले तब उनके पास श्रीजी महाराज की निष्ठा का ही बल था। सो ही, मुट्ठीभर भक्तों के सहकार से उन्होंने अक्षरपुरुषोत्तम के भव्य मंदिरों के निर्माण की प्रवृत्ति शुरु करी और... अनोखे त्याग, बलिदान, दृढ़ निष्ठा व भक्ति की नींव पर अक्षरपुरुषोत्तम के गगनचुंबी मंदिरों का निर्माण किया।

भारतवर्ष में आध्यात्मिकता की ज्योत जब-जब बुझने को हुई, तब-तब हमेशा अवतारी पुरुषों ने प्रगट होकर उसे प्रज्वलित रखा है। यूं, भगवान स्वामिनारायण ने इस ज्योत को सदैव प्रज्वलित रखने का वरदान देकर सच्चे संत द्वारा-ब्रह्मभाव की प्राप्ति हेतु निश्चिंतता दे दी।

गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज ने पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीजी महाराज के साथ स्वामी को जोड़ कर नया 'देवयुगल' रचा। स्वामी यानि – मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी और... यह युगल यानि 'अक्षर-पुरुषोत्तम'। भगवत्स्वरूप के साथ पार्वतीजी, लक्ष्मीजी, राधिकाजी इत्यादि की उपासना होती थी। उसमें भगवान का ऐश्वर्य और शक्ति का श्रीरूप में पूजन होता था। गुरुहरि शास्त्रीजी महाराज ने उस स्थान पर त्याग-वैराग्य को विराजित किया और जीव की सर्वोच्च अवस्था– 'ब्राह्मीस्थिति' का एहसास कराने 'साकार अक्षरब्रह्म' का परिचय दिया।

इस प्रकार **'स्वामी-नारायण'** यानि – अक्षर और पुरुषोत्तम-ब्रह्म और परब्रह्म के युगल स्वरूप की प्रगट की शुद्ध निष्ठा और अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की भक्ति करने का सनातन सिद्धांत ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा मुमुक्षुओं के जीवों में बैठ गया।

गुरुहरि योगीजी महाराज अपनी परावाणी में

अकसर कहते कि –

'इस ब्रह्मांड में अपनी अपेक्षा अन्य को भाग्यशाली मानना, यही सबसे बड़ी भूल होगी।'

हम अपने भीतर इसी दृष्टि से निहारें, तो यह मानने पर सहज ही अपने मन-बुद्धि के दायरों से मुक्त हो जाएंगे और आचार एवं व्यवहार में 'शिक्षापत्री' का प्राधान्य रख कर जीवन को अमृतमय भी बना पाएंगे। तो क्यों ना यह दिव्य मति सदैव रख कर हम इस भव्य प्राप्ति के आनंद के भोक्ता बनें – यही, शिक्षापत्री जयंती एवं गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज के प्रागट्य पर्व पर प्रार्थना!

✡✡✡

प.पू. स्वामी 'अक्षर के विहारी'! आपको स्नेहे करें वंदना...

१५ फरवरी – प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी का प्रागट्यदिन... चार पंखुड़ियों वाले गुणातीत समाज का एक अंग सांकरदा का श्री अक्षरपुरुषोत्तम मंदिर है। यहाँ लौकिक दृष्टि से तो प.पू. पप्पाजी के पनौते पुत्र, जो कि गुरुहरि योगीजी महाराज के अंतर की प्रसन्नता के पात्र बने हैं - वे प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी विराजते हैं। सो, उनके प्रागट्यदिन पर सहज ही प्रार्थना करने - भाववंदना करने दिल उमड़ पड़ता है।

योगीचरण में सर्वस्व समर्पण करके स्वयं तो धन्यता अनुभव करी ही, साथ ही आज अखंड प्रभुधारक संत बन कर अनेक चैतन्यों को माया से परे करने का दिव्य कार्य करके उनकी आत्मोन्नति कराने वे तत्पर हैं।

आध्यात्मिकता की इस ऊँचाई पर वे किस प्रकार पहुँच पाए? अपनी 'साधना' के कई पड़ावों के दौरान उन्होंने अपने गुरु का अटूट भरोसा, उनके वचन में अत्यधिक विश्वास किस प्रकार पकड़े ही रखा? और मुक्तों के लिए कैसे आदर्श रूप बन कर वे जिए हैं? यह इस मंगलकारी दिन पर निहार कर स्वयं को धन्य करें...

❖ **१६ वर्ष** की आयु में जब थोड़ी अक्कल आती है, वहीं गुरुहरि योगीजी महाराज ने प.पू. पप्पाजी में रह कर परीक्षा ली। दैहिक संबंधों के प्रति प.पू. पप्पाजी को उपेक्षा थी ही, जिससे रमेशभाई (प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी) के दिल को ठेस लगी। प.पू. पप्पाजी ने कहा – **'योगी का जो हो, उसके साथ ही मैं संबंध रखता हूँ।'** सो, पिता के प्रेम वश वे योगीजी महाराज से जुड़ गए। अपेक्षा नहीं रखी, लेकिन 'मुझे क्या करना है?' यह सोच लिया। इस प्रकार सच्चे प्रेम से इस आदर्श युवक ने साधक बन कर साधना पथ पर चलना शुरु किया।

❖ **२५ वर्ष** की आयु में गुरुहरि योगीजी महाराज ने उन्हें ५१ योगेश्वरों के समूह में साधु की दीक्षा दी। रमेश मिट कर वे 'अक्षरविहारी' बने। योगीजी महाराज का यथार्थ दर्शन करने - इनके 'स्वरूप' को पहचानने खूब जाग्रतता रखी, प्रार्थना करी, सेवा करी और प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी तथा प.पू. महंतस्वामिजी का समागम किया। गुरुहरि योगीजी महाराज के वचन से प्रारंभ में प.पू. महंतस्वामी में बापा को देखा... बापा ने आज्ञा करी थी कि – 'महंतस्वामी का समागम करना।' सो, प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी रोज अपनी गरज से उनके पास जाते और प.पू. महंतस्वामी भी परीक्षा लिए बिना रहते नहीं थे। रोज ही कहते कि – 'तू दोपहर को आना... शाम को आना... कल आना...' लेकिन प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी ने तो दिव्यभाव रख कर बापा का वचन माना; तो **'भगवान और भगवान के भक्त के हर चरित्र में निर्दोषभाव रखना ही है'** – ऐसा बुद्धियोग पाया। और यूं एक **आज्ञापालक साधक कृपापात्र संत बन गया।**

❖ **२९ वर्ष** की आयु में प.पू. योगीबापा ने संतों को संभालने की जिम्मेदारी दी। बहुत ही माहात्म्य से संतों द्वारा सेवा करवा कर और कथावार्ता करके बलभरे शब्दों से सिंचन किया। यूं अनेक

चैतन्यों को दिव्यता के मार्ग पर तो अग्रसर किया ही, साथ ही अध्यात्म के मार्ग में आते सभी आवरणों को दूर करने सुहृद्भाव से साथ दिया... प्रार्थना करके साधकों का-गृहस्थों का मार्ग आसान किया। चैतन्यों की ऐसी परवरिश करते निहार कर प्रसन्नता के भावस्वरूप बापा ने प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी को गुलाब का हार पहनाया।

❖ **३० वर्ष** की आयु में फूल के उस हार ने सुगंध फैलाई और एक ही वर्ष में स्वतंत्र रूप से भगवान को धारने संस्था ने विमुख किया! उसमें केवल प्रभु का ही कर्तापन मान कर भजन का उपाय लिया और ऐसी कठिन परीक्षा से गुज़र कर स्वतंत्र भगवानधारक स्वरूप बने। तत्पश्चात् प.पू. काकाजी में बापा को देखा... प.पू. पप्पाजी को बापा का स्वरूप मान कर सेवन किया और योगीबापा के अंतर की प्रसन्नता प्राप्त करी!

❖ **और... ३२** वर्ष की आयु में सांकरदा मंदिर के महंत के रूप में नियुक्त हुए। शुरुआत में बहुत ही मुश्किलें और कसनी होने के बावजूद भी उनसे जुड़े चैतन्यों को प.पू. काकाजी की सेरेछाया में तीव्र प्रार्थना और संकल्प से वे स्वतंत्र रूप से संभालते रहे और साथ ही साथ उन चैतन्यों को **'अपनी ओर साधु की दृष्टि और अन्य की ओर भगवान की दृष्टि' रखने का सिंचन किया।**

ऐसे स्वरूप को तो चैतन्यों का दोष नज़र में ही नहीं आता; सो भगवान देने का ही एकपक्षीय प्रवाह बहाया, फलस्वरूप चैतन्यों के खाली प्याले ब्रह्मरस से भर गए और वे भी भगवान धारते हो गए।

यूं, लंबे अरसे तक गुरुहरि योगीजी महाराज के वाहन के चालक बन कर जो सेवा करते थे – वही प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी आज अनेक जंगम मंदिरों के जीवन रथ का संचालन कर रहे हैं।

ऐसे दिव्य एवं समर्थ सारथी के प्रागट्य पर्व के पुनीत अवसर पर सभी गुणातीत स्वरूपों एवं उनके श्रीचरणों में प्रार्थना करें कि जैसे आपने प्रभु के 'अल्पसंबंधी भक्तों' की महिमा समझी... सभी को ऐसी पराभक्ति करने अग्रसर कर रहे हो, उसी राह पर चलते रह कर हम सभी महाराज के सच्चे सत्संगी बनें... सच्चे स्वामिनारायणी बन कर रहें...

(गुणातीत ज्योत के वर्ष-१९९२ के अंक ३ पर आधारित)

✡✡✡

'श्रवण, मनन, निदिध्यासन'

✻ ऐसे दीवाली के दिनों में अपने घर बंद करके यहाँ आ जाना – गहराई से सोचें, तो यह बहुत बड़ी बात है ; सच में एक बहुत बड़ी तरक्की है। और... वो भी दस-बारह दिन! आज से दस साल पहले ऐसा करना हो, तो हम नहीं कर पाते।

'अरे! दीवाली में ऐसे कोई घर छोड़ कर थोड़े जाता है?' – यूं तर्क करते।

उसकी बजाय, कहते हैं ना कि सब जॉयस्ली आते हैं; ऐसा भी नहीं कि अंडर कम्पलझन।

✻ 'गुणातीतानंदस्वामिजी की बातों' में है कि **सत्संग में चलते रहेंगे, तो दोष कब टल जाएंगे, पता भी नहीं चलेगा** – जैसे जूते के नीचे गोबर लगा हो-चिपका हो, लेकिन कंकर वाली जमीन पर चलते रहेंगे ; तो गोबर कहाँ निकल जाता है, पता भी नहीं चलता।

✻ हम पिक्चर देखने जाते थे, तो सोचते थे कि वहाँ पहले तो स्लाईड दिखाएंगे, फिर न्यूझ आएगी, फिर ट्रेईलर आएगा और पिक्चर तो बाद में शुरु होगी। वैसे आप लोग भी सोचते हो कि अभी तो धुन चलती होगी, अभी भजन शुरु हुए होंगे, अभी तो दूसरे बोलते होंगे, संत तो बाद में बोलेंगे... तब तक में हम पहुँच जाएंगे। ऐसा नहीं करना। **शिविर**

को 'शिविर' का दर्जा देकर सब समय से पहुँच जाना।

* **महाराज** कितने कॉमन लेवल पर हर एक के साथ रसबस हुए? कैसा **एक आत्मीय परिवार खड़ा करना चाहते थे** वो? **दो सौ साल के बाद – १९५२ की साल से फिर ऐसा परिवार दिखना शुरु हुआ और आज इसकी ये खुश्बू हम महसूस कर रहे हैं।**

'एक-दूसरों से मिलने की खुशी' – ये बहुत बड़ी बात बनी हुई है अपने जीवन में। हमें ख्याल नहीं आता कि कैसे ये बात अपने जीवन में बन गई। वर्ना, हम सब यहाँ ऐसे बैठे ही नहीं होते; इधर-उधर घर में सड़ते होते।

* 'सात्त्विक' का सेवन किया हो, उसे विपरीत देशकाल नहीं लगता।

सात्त्विक यानि – 'शुद्ध सात्त्विक'! मतलब 'ब्रह्मस्वरूप संत' का जिसने सेवन किया हो।

* श्रीजी चरित्र विहार पढ़ने से पता चलता है कि महाराज के समय में कैसे-कैसे भक्त थे और महाराज का भी अपने हर एक भक्तों के साथ कैसा अनूठा संबंध था।

* भगवान को हम प्रार्थना करें कि खुश होकर वे आशीर्वाद दे दें। पर दिल की सच्चाई से वो प्रार्थना होनी चाहिए। ऊपर-ऊपर से प्रार्थना करें और वो राजी हो जाए, तो समझना कि हमें भगवान नहीं – 'भोजिया' मिला है। बाकी सच्चाई से प्रार्थना करें, तो उन्हें खुश होना ही पड़े। **उनको वनवे ट्रॉफिक ही है – 'खुश होना'; वो नाराज़ नहीं हो सकते।** हमें कितना बड़ा फायदा है यह?

* दिवाली की शिबिर - मानो ईयर एन्डिंग की शिबिर है। तो, ईयर एन्डिंग में हिसाब का लेखा-जोखा करना कि हमने यह सारे साल में क्या करा है? हमने कुछ प्रॉफिट करा या घाटे में ही रहे हैं? ...यहाँ आकर सेवा करने से हम लाखों की कमाई करते हैं; लेकिन ऐसी कुछ 'असेवा' भी हो जाती है – यह बात खूब गौर से समझ लें। यह बड़ी डॅलिकेट ईश्यू है; क्योंकि हमें इस लॉस का ख्याल नहीं हैं। इसलिए इसकी ईफॅक्ट का हम अंदाजा नहीं लगा सकते। दस लाख रूपए कमाओ, लेकिन ऐसे धंधे कर जाते हैं कि पाँच करोड़ का नुकसान होता है! फिर कमाने की बात कहाँ रही?

मानो आप खूब बीमार हो, तब भी संतों के प्रति लगाव के कारण बीमारी में भी दर्शन करने आओ, महापूजा में बैठो – यह खूब अच्छी बात है; खूब पुण्य जमा कर लिया। लेकिन, कोई मुक्त यदि वहां सो रहा हो और जाते-आते तुम्हें चुभे कि – यह यहां सो रहा है; तो, कितना परिश्रम करके आप यहाँ आए, महापूजा का लाभ लिया-धुन करी, पुण्य कमाया, **लेकिन इतनी छोटी-सी बात से सारा पुण्य खत्म हो गया**! हाँ, मज़ाक में या लव इन्टीमसी से उसे कह दो, वो अलग बात है। सो, **ये धंधे सत्संग में न करें। यह सत्संग एक 'ब्रह्माग्नि' है। खूब ध्यान रखना।**

* हमारा तो स्टेटस ही अलग है। हम कहते हैं न कि हम आत्मबुद्धि से जुड़े सत्संगी हैं।

हमारे परिवार के बारे कोई कुछ कहेगा, कुछ बात करेगा तो हम तुरंत कहेंगे कि हमारे कुटुंब में ऐसा नहीं है। अरे! बचाव करेंगे कि तुम्हारे यहाँ ऐसा होता होगा, हमारे यहाँ तो ऐसा नहीं है; होने के बावजूद भी ऐसा कहेंगे। ऐसे परिवारभाव से हम सच में सत्संग में जीते हैं क्या?

इसलिए एक शब्द है - **'कुटुंबभाव'**। गल्ती से भी हम किसी के पास नहीं बोलते कि हमारे फॅमीली में भी ऐसा गलत चल रहा है। तो, हमारे सत्संगीओं के बारे हम कैसे कह सकते हैं?

* काकाजी महाराज की 'पुष्प समाधि की परिक्रमा' के एक-एक कदम पर एक-एक 'अश्वमेघ यज्ञ' का फल मिलता है। **यह बात सिर्फ महिमावाचक शब्दों में न लेना।**

और...जैसा यह सच है, वैसा यह भी समझना कि

भक्तों की टीकाचर्चा-बुराई करने में कई पुण्य का फल हम गवाँ देते हैं। वचनामृत में भी लिखा है कि भगवान के भक्तों की झंझट करने से हमारा बिगड़ता है। **यह रास्ता हम बंद रखें, इस रास्ते हम न चलें।**

✡✡✡

भजन

(राग – हवा में उड़ता जाए, मेरा लाल दुपट्टा...)

मौज में मूर्ति लुटाएं, संबंध देते हैं श्रीजी का,
परिचय देते काकाजी का, गुरुजी-गुरुजी
कुटुंबभाव प्रगटाएं अपनापन देकर के सबको,
अपनापन देकर के सबको, गुरुजी-गुरुजी।
मौज में मूर्ति लुटाएं, संबंध देते हैं श्रीजी का,
परिचय देते काकाजी का, गुरुजी-गुरुजी

ओ... पल-पल रक्षा चैतन्यों की माँ की भाँति करते, रक्षक बन कर करते, -२
चैतन्यशुद्धि करके जीव को प्रभु सम्मुख हैं करते - २
हो...प्रभु सम्मुख हैं करते
मौज में मूर्ति लुटाएं, संबंध देते हैं श्रीजी का,
परिचय देते काकाजी का, गुरुजी-गुरुजी
कुटुंबभाव प्रगटाएं अपनापन देकर के सबको,
अपनापन देकर के सबको, गुरुजी-गुरुजी।

ओ... मुक्त स्वभाव ग्रहण करते हैं दिव्य यंत्र हैं तुम्हारे, दिव्य यंत्र हैं तुम्हारे, -२
कुटुंबी आपका मानें उनको, लगे सभी हमें प्यारे -२
हो... लगे सभी हमें प्यारे
मौज में मूर्ति लुटाएं, संबंध देते हैं श्रीजी का,
परिचय देते काकाजी का, गुरुजी-गुरुजी
कुटुंबभाव प्रगटाएं अपनापन देकर के सबको,
अपनापन देकर के सबको, गुरुजी-गुरुजी।
मौज में मूर्ति लुटाएं, संबंध देते हैं श्रीजी का,
परिचय देते काकाजी का, गुरुजी-गुरुजी...

निमंत्रण

प.पू. गुरुजी की निश्रा में –
3 फरवरी 2008, रविवार प्रातः 9:00 से 11:00
अशोकविहार 'ताड़देव' में श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण मंदिर का पाटोत्सव
एवं
ब्रह्मस्वरूप प.पू. काकाजी महाराज का साक्षात्कार दिन मनाने......
और
प.पू. दीदी की निश्रा में सायं 7:00 से
हमारे आत्मीय प.भ.पुरी साहेब (दिल्ली) के सुपुत्र *चि. आशिष*
एवं
प.भ.ओ.पी.अग्रवालजी (मुंबई) की सुपुत्री *सौ. कां. प्रियंका*
के
विवाह में सपरिवार इष्ट मित्रमण्डली सहित उपस्थित रहने आपको हार्दिक निमंत्रण है।

व्रतोत्सवसूची

(1)	दि.	26.1.2008,	शनिवार	—	**भारत का प्रजासत्ताक दिन**
(2)	दि.	3.2.'08,	रविवार	—	एकादशी – व्रत **ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज की स्वधामगमन तिथि** **ब्रह्मस्वरूप प.पू. काकाजी महाराज का साक्षात्कार दिन** और **श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण मंदिर – दिल्ली का पाटोत्सव**
(3)	दि.	11.2.'08,	सोमवार	—	वसंतपंचमी, शिक्षापत्री जयंती, ब्रह्मस्वरूप स्वामिश्री प.पू. शास्त्रीजी महाराज का प्राकट्य दिन
(4)	दि.	15.2.'08,	शुक्रवार	—	प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी की जन्मजयंती
(5)	दि.	17.2.'08,	रविवार	—	एकादशी – व्रत
(6)	दि.	3.3.'08,	सोमवार	—	एकादशी – व्रत
(7)	दि.	6.3.'08,	गुरुवार	—	महाशिवरात्रि, व्रत
(8)	दि.	7.3.'08,	शुक्रवार	—	प.पू. काकाजी महाराज का स्वधामगमन दिन
(9)	दि.	8.3.'08,	शनिवार	—	प.पू. गुरुजी की प्रागट्य तिथि
(10)	दि.	13.3.'08,	गुरुवार	—	**प.पू. गुरुजी का ७१वां प्रागट्य दिन** *(30 मार्च, रविवार की सायं ताड़देव – दिल्ली में मनाया जाएगा।)*

R.N.I. 28971/ 77
Air Mail
'**Bhagwatkripa**' Bimonthly Magazine – Despatched on 15th of alternate months
If undelivered please return to :— *Printer, Publisher, Editor :* **SHRI PRABHAKER RAO *FOR* YOGI DIVINE SOCIETY- DELHI**
'Taad-dev', Kakaji Lane, Swaminarayan Marg, Ashok Vihar-III, Delhi-110 052 (India) Tel.: 2730 1327
Printed at : **D.K. FINE ART PRESS (P) LTD.,** A 6, Community Centre, Nimri Colony, DELHI-110 052